शोध-चिंतन पत्रिका: सहयोगी विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका
अंक:3; जुलाई-दिसंबर, 2021; पृष्ठ संख्या : 01-11

नागार्जुन तथा गुणदास अमरसेकर के उपन्यासों में प्रगतिशील चेतना : एक तुलनात्मक अध्ययन

✍ **सुभाषिनी रत्नायक**

शोध-सार:

नागार्जुन और अमरसेकर क्रमः हिंदी और सिंहली के मूर्धण्य उपन्यासकार हैं। ब्राह्मण होते हुए भी नागार्जुन ने पारंपरिक रीति-रिवाजों की उपेक्षा कर अपने चिंतन से जीवन को आगे बढ़ाया। नागार्जुन जनमुखी साहित्यकार हैं, समाजोन्मुखी साहित्यकार हैं। इसी तरह गुणदास अमरसेकर भी सिंहली साहित्य के सशक्त कथाकार हैं। आपेन पुराणे संस्कारों से बंधे समाज को मुक्त करने का प्रयास किया।

बीज शब्द: *नागार्जुन, गुणदास अमरसेकर, उपन्यास, प्रगतिशील चेतना।*

प्रस्तावना:

कोई भी साहित्यकार किसी एक देश अथवा एक जाति का व्यक्ति नहीं होता। वह अपनी भौतिक परिस्थितियों की उपज के रूप में तत्कालीन समाज की ऐतिहासिक शक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है। एशिया महाद्वीप के दो देश भारत और श्रीलंका के हिन्दी तथा सिंहली साहित्य के आधुनिक युग के दो महान कृतिकार, नागार्जुन तथा गुणदास अमरसेकर के उपन्यासों में निहित प्रगतिशील चेतना की तुलनात्मक पड़ताल मेरे शोध-कार्य का विवेच्य विषय है।

हिन्दी तथा सिंहली के इन दोनों साहित्यकारों के उपन्यास साहित्य की आंतरिक विशेषताओं का उद्घाटन करना तथा नागार्जुन से अमरसेकर को जोड़ना कई दृष्टियों से अतीव महत्वपूर्ण है। क्योंकि इन दोनों साहित्यकारों का जन्म दो देशों में हुआ है। दोनों के युग की परिघटनाओं तथा दोनों साहित्य के उद्भव और विकास में समानताएँ भी दिखायी देती हैं और भिन्नताएँ भी।

हिन्दी और मैथिली के प्रतिस्थित रचनाकार नागार्जुन को पूरा हिन्दी जगत कई नामों से जानता और मानता है।(राय

2006:01) 'ठक्कन', 'वैद्यनाथ मिश्र', 'यात्री', 'वैदेह', 'बाबा', 'नूतन कबीर', 'नागार्जुन' आदि नामों से एक ऐसे साहित्यकार को जाना जाता है जो जीवन और साहित्य में बेहद बेलिहाज़ तथा निडर व्यक्तित्ववाले सर्जक रहे हैं। अपने जीवन और अनुभूति के संग नागार्जुन का 'बहुभाषी रचनाकार' व्यक्तित्व अपनी अलग पहचान बन गया था। प्रारंभ से ही क्रांति, समता, प्रगति और जनवाद ये चारों शब्द अपने अर्थ और व्यवहार के साथ नागार्जुन के भीतर स्थायी भाव से आसन लगाये बैठे थे। पुश्त-पुश्त की दरिद्रता तथा राजनीति की वामपक्षीय प्रवृत्ति ने उन्हें कोटिशीर्ष, कोटिबाहु एवं कोटिचरण का रचनाकार बना दिया है।

सिंहली साहित्य को उसके पुराने संस्कारों से मुक्त कर उसे सहज विकास की दिशा देने वाले महत्वपूर्ण साहित्यकारों में से गुणदास अमरसेकर की अद्वितीय भूमिका है। सामाजिक चेतना, वैचारिक प्रतिबद्धता और अभिव्यक्ति कौशल की दृष्टि से आधुनिक सिंहली साहित्य के इतिहास में अमरसेकर को अलग से रेखांकित किया जा सकता है। वैचारिक अंतर विरोधों के बावजूद भी वे जनवादी साहित्यकार हैं। उपन्यासकार, कवि, कहानीकार तथा आलोचक के रूप में सिंहली साहित्य में गुणदास अमरसेकर की प्रतिष्ठा रही है। अभी तक जीवित गुणदास अमरसेकर एक ऐसे साहित्यकार हैं जो आधुनिक श्रीलंका के इतिहास में समाज तथा राजनीति को अपने विचारों से सबसे अधिक प्रभावित कर रहे हैं। उनका महत्व उपन्यासों के कथानक को सामाजिक मोड़ देने तक सीमित नहीं है, वरन् एक सशक्त गद्य-शैली के निर्माण में भी उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

विश्लेषण:

हिन्दी साहित्य में उसके आदिकाल से ही प्रगतिशील तत्त्व मिलते हैं। हिन्दी साहित्य में वैदिक साहित्य के विरुद्ध प्राचीन भौतिकवादी विचारधारा एवं दर्शन मौजूद थे। मध्यकाल में कबीर प्रगतिशीलता के अगुआ रहे हैं। उसी प्रकार पुरातन सिंहली साहित्य, जो बौद्ध धर्म के आश्रय में विकासित हुआ है, उसमें भी प्रगतिशील तत्त्व मिलते हैं। किंतु आधुनिक युग के संदर्भ में साहित्य में जिस विचारधारा ने प्रगतिशील नाम से जो विशिष्ट अर्थ प्राप्त किया है, उसका विश्लेषण करना हमारा उद्देश्य है। भारत की स्वतंत्रता के बाद इस पूरे काल में भारतीय समाज का मुख्य अंतर्विरोध शोषक तथा शोषितों, पूँजीपति तथा सर्वहारा, सामंतशाही तथा

किसानों के बीच रहा था। नागार्जुन ने प्रेमचंद के युग से चली आ रही सामाजिक उपन्यासों की परंपरा को बड़ी शिद्दत से अपनाया तथा स्वतंत्र भारतीय समाज में आये परिवर्तनों को अपने उपन्यासों में रेखांकित किया। भारतीय कृषकों की पीड़ा प्रेमचंद ने भी उभारी है। किंतु नागार्जुन ने उन कृषकों की हताशा तथा अंदर-अंदर सुलगती आग को एक विद्रोही स्वर में परिवर्तित किया है तथा गाँव में बसने वाले मूल जनों को वाणी दी है। अत: इस संदर्भ में प्रो. प्रणय कुमार के मत का उल्लेख करना उचित ही प्रतीत होता है- प्रेमचंद की संवेदना नागार्जुन की रचनाओं में प्रगतिशील चेतना में प्रेरित हो गई है।(राय 2011:37)

नागार्जुन के उपन्यास 'बलचनमा' का कथानक बिहार के ज़िला दरभंगा के ग्रामीण जीवन पर आधारित है। इस उपन्यास का मुख्य नायक बलचनमा है। इसमें तटस्थ दृष्टि से ग्रामीण जीवन की ओर देखने का प्रयास किया गया है तथा उच्च वर्ग के द्वारा निम्न वर्ग के साथ होनेवाला व्यवहार इसमें दिखाया गया है। नागार्जुन की साम्यवादी विचारधारा की स्पष्ट छाप इस उपन्यास में दृष्टिगोचर होती है। बलचनमा एक गरीब खेतिहर का पुत्र है, जो सात कट्ठे ज़मीन के स्वामी के रूप में हमारे सामने आता है। इस निम्नवर्गीय किसान-पुत्र के यातनापूर्ण जीवन का प्रारंभ बाप की मृत्यु के बाद होता है। बलचनमा के मालिक गरीब का शोषण करने के लिए सदा उद्यत रहता है। बलचनमा के मालिक से जिस प्रकार उसकी ज़मीन नहीं बच सकती है, उस प्रकार उसकी माँ-बहन की इज़्ज़त भी नहीं बच सकती। अर्थ-व्यवस्था के असंतुलित धरातल पर खड़े सामाजिक ढाँचे की कुरूपता नागार्जुन की रचना में उजागर होती है। ज़मीनदार, किसानों तथा मज़दूरों का किस प्रकार शोषण करते हैं, उसकी एक सच्ची तस्वीर इसमें मिलती है। ज़मीनदारी-शोषण की पहली तस्वीर जो बलचनमा के मानस-पटल पर पड़ती है वह इस प्रकार है-

> मालिक के दरवाज़े पर मेरे बाप को एक खम्भे के सहारे कसकर बाँध दिया गया है। जाँघ, पीठ, और बाँह----सभी पर बाँस की हरी कैली के निशान उभर आये हैं। चोट से कहीं-कहीं खाल उखड़ गयी है और आँखों से बहती आँसुओं की धारा गाल और छाती पर सूखती नीचे चली गयी है...चेहरा काला पड़ गया है। होंठ सूख रहे हैं।
>
> (नागार्जुन 1987:03)

इस प्रकार पाठक की संवेदना उभरकर बलचनमा की पीड़ा से तादात्म्य स्थापित करती है।

नागार्जुन मार्क्सवादी विचारधारा के लेखक हैं। उनके लगभग सभी उपन्यासों में मार्क्सवादी अवधारणा और कला का गत्यात्मक संबंध स्थापित हो गया है। साम्यवादी विचारधारा से संबंध होने के कारण नागार्जुन वर्ग-संघर्ष में आस्था रखते हैं तथा सर्वहारा वर्ग ही नागार्जुन का आराध्य हो जाता है। उनके उपन्यासों में निरूपित सबसे बड़ी प्रगतिशीलता वही है। स्वयं उनकी मान्यता के अनुसार-

> अस्सी प्रतिशत जनता (किसान और मज़दूर) हमारे इष्ट देवता है, जो जीवन के आसपास फैली हुई है। मैं भी उन्हीं के साथ जुड़ा हुआ हूँ। मैं समाज के घटना-प्रभाव से भिन्न नहीं हूँ। पात्रों के साथ मुस्कुराता हूँ, उनसे बात करता हूँ। मैं ऐसे वर्ग का प्रतिनिधित्व कभी नहीं करता जिसमें मैं नहीं हूँ।
>
> (राय 2011:151)

नागार्जुन के इस कथन को ध्यान में रखकर हम नागार्जुन की विचारधारा को व्यापक अर्थ में प्रगतिशील और समाजोन्मुखी कह सकते हैं। वही विचारधारा उनके उपन्यास साहित्य को प्रगतिशील चेतना से जोड़ती है।

नागार्जुन क्रांतिकारी थे। उन्होंने शोषित-पीड़ित को शोषकों के विरोध में क्रांति की प्रेरणा दी। वे समानता पर आधारित समाज का निर्माण करना चाहते थे। उनका प्रगतिशील जनवादी स्वर युगीन सामाजिक विषमताओं तथा विकृतियों के प्रति न केवल ललकार भरता है, वरन जीवन का प्रत्येक बदलाव भी चाहता है। इस संदर्भ में ललित अरोरा का कथन उल्लेखनीय है। उनके शब्दों में-

> नागार्जुन ने समाज में व्याप्त कुरीतियों, विकृतियों और असंगतियों को यथार्थ की दृष्टि से देखा, समझा और अभिव्यक्त किया। संपूर्ण भारत के दुख, दर्द, पीड़ा, छटपटाहट, संकुचन का ग्रामीण तथा नगरीय जीवन की विद्रूपताएँ तथा निम्न मध्यवर्गीय जनता के अभाव के सभी रूप उनकी कलम रेखांकित करती है।
>
> (अरोरा 1986:103)

इस अवतरण से यह स्पष्ट है कि नागार्जुन आधुनिक हिन्दी साहित्य के सबसे बड़े विद्रोही तथा प्रगतिशील साहित्यकार अपने-आप में साबित हो जाते हैं। यद्यपि

नागार्जुन प्रेमचंद की यथार्थवादी परंपरा के लेखक हैं और उनका बलचनमा 'गोदान' के होरी का स्मरण दिलाता है, किन्तु प्रेमचंद में व्यापक सहानुभूति थी, वह नागार्जुन में दिखाई नहीं देती। तथापि उनके बलचनमा में नागार्जुन की गहरी मार्क्सवादी दृष्टियाँ देखने को मिलती हैं। नागार्जुन ने बलचनमा को निडर तथा स्वाभिमानी बनाया ताकि वह अपने न्याय के लिए अंतिम साँस तक लड़ता रहेगा। अर्थात् नागार्जुन के पात्र किसीके सामने झुकता नहीं। बलचनमा कहता है-

> ...कैद काट लूँगा, फाँसी चढ़ूँगा। गाँव से उजड़ जाऊँगा। मगर, शैतान के आगे कभी सिर नहीं झुका लूँगा। हाँ मैं गरीब हूँ। माँ और बहन को ज़हर दूँगा, लेकिन उनको तेरी रखैल बनाने का तेरा सपना पूरा नहीं होने दूँगा।(नागार्जुन 1987:74)

अन्याय के खिलाफ़ इतनी निर्भीकता से लड़नेवाला शोषित-वर्ग का पात्र हिन्दी उपन्यास साहित्य में बार-बार नहीं मिलता। ऐसे पात्रों का निर्माण नागार्जुन जैसे प्रगतिशील चेतना से संपन्न रचनाकार ही कर सकते हैं। यही कारण है कि न केवल 'बलचनमा' में बल्कि नागार्जुन के समस्त उपन्यासों में सामाजिक विषमता से जूझते हुए शोषितों का संघर्ष उभर कर प्रखरता के साथ प्रकट हुआ है।

साहित्य में सामाजिक यथार्थ प्रगतिशील साहित्य की महत्वपूर्ण देन है। नागार्जुन प्रगातिशील चेतना से जुड़े साहित्यकार हैं, अतः शोषित समाज की हर प्रकार की पीड़ा उनकी औपन्यासिक कृतियों में पूरे आवेग के साथ उभरकर आयी है। 1953 ई. में प्रकाशित नागार्जुन का 'नयी पौध' उपन्यास एक सामाजिक उपन्यास है, जिसके माध्यम से अनमेल विवाह की समस्या तथा उसके समाधान का मार्मिक वर्णन किया गया है। नागार्जुन अपने इस उपन्यास में अनमेल विवाह की समस्या को उजागर कर चुप नहीं हो जाते हैं, उसके समाधान का रास्ता भी दिखाते हैं। 'नयी पौध' का पात्र वाचस्पति बिस्सेरी की समस्या का समाधान प्रस्तुत करते हुए अपनी प्रगतिशील विचारधारा का परिचय देता है, जो इस प्रकार है-

> ...आप लोग सामाजिक विषमता के कारण जिस मुसीबत में फँस गये थे, उसके बारे में दिगंबर से मेरी काफ़ी चर्चा हो चुकी है। हमने जो फैसला किया, वह आपको मालूम हो गया होगा। व्यक्ति का ही समाज का संकट

है और समाज का संकट समूचे देश का संकट है। (नागार्जुन 1999:58)

इस अवतरण में वाचस्पति नहीं, मार्क्सवादी नागार्जुन ही इस प्रकार बोलते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि नागार्जुन इस उपन्यास में केवल अनमेल विवाह की समस्या का वर्णन ही न करते, बल्कि अपनी प्रगतिशील दृष्टि से समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। वह समाधान भी एक ऐसा कदम है जो क्रांतिकारी व्यक्ति ही उठा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि समस्या के मूल कारण को मिटाने के बाद, इस समस्या को परिणाम तक ले जाने वाली प्रगतिशीलता का ज़्यादा सकारात्मक तरीका नागार्जुन ने अपने इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है। एक सामाजिक कुप्रथा के रूप में आरंभ किया गया यह उपन्यास अपने समय के एक विशेष मुद्दे पर प्रगतिशीलता की सीढ़ी पर सीढ़ी तैयार करता हुआ सही लक्ष्य तक पहुँचता है। इससे नागार्जुन की प्रगतिशील चेतना की गहराई का पता लग सकता है। डॉ. सुषमा धवन ने 'नयी पौध की सफ़लता को स्वीकार करते हुए लिखा है-

> ...नयी पौध की विजय उगती तथा फूटती हुई नवीन सामूहिक चेतना को बाज़ी देने में सार्थक हुई है, जिसमें कि प्रगतिशील दृष्टिकोण है। (नागार्जुन 1999:279)

इस उपन्यास में नयी पौध एक प्रतीक है- नये-नये पौधों का अर्थात् नये युवकों का जो अत्यंत विप्लवी होता है। नागार्जुन नयी पीढ़ी पर विशवास करते थे, क्योंकि वही गाँव की कुरूतियों को मिटाकर एक नये स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकती है। प्रगतिशील कथाकार होने के कारण नागार्जुन अपने प्रगतिशील साहित्य के द्वारा यह संदेश देते हैं। नागार्जुन का यथार्थ केवल यथार्थ पर ही समाप्त नहीं होता, यथार्थ के विकल्प के चिंतन पर समाप्त होता है।

जिस प्रकार नागार्जुन प्रेमचंद की जनवादी कथा-परंपरा को आत्मसात् करते हुए साहित्य की क्रांतिकारी भूमिका को अच्छी तरह समझते थे, उसी प्रकार अमरसेकर सिंहली साहित्य के युग- प्रवर्तक माटिन विक्रमसिंह की सामाजिक कथा परंपरा को आत्मसात् करते हुए अपने साहित्य की यात्रा शुरू करते हैं। 'करुमक्कारयो' अमरसेकर का पहला उपन्यास है जिसकी रचना सन् 1955 में की गयी है। 'करुमक्कारयो' उपन्यास उनका एक उदाहरण है। इस उपन्यास की भूमिका में उपन्यासकार स्वयं उस संबंध में अपना विचार प्रकट करते हैं। अमरसेकर के शब्दों में-

> स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व विक्रमसिंह ने ग्राम-जीवन को पृष्ठभूमि बनाकर विशाल तथा मूल्यवान साहित्य की रचना की थी, किंतु बीच में वह धारा खंडित हो चली थी। मेरा उपन्यास (करुमक्कारयो) उस कथा परंपरा की अंतिम कड़ी है।
>
> (अमरसेकर 1989:भूमिका)

अमरसेकर ने 'करुमक्कारयो' शीर्षक अपने उपन्यास में प्रगतिशील विचारों के साथ ग्रामीण जीवन तथा उसकी समस्याओं का वर्णन किया है। प्रगतिशील साहित्य का यह लाभ हुआ था कि ठोस सामाजिक आधार पर साहित्य लिखा जाने लगा। प्रगतिशील चेतना के परिणाम स्वरूप समाज और इतिहास के महानायकों के बदले सामान्य तथा नगण्य लोग भी साहित्य के नायक के रूप में प्रस्तुत किये जाने लगे। उस प्रकार अमरसेकर इस उपन्यास के पात्र गाँव के साधारण लोगों को बनाते हैं। उपन्यास की पृष्ठभूमि का निर्माण अमरसेकर ने अपने ग्रामीण जीवन के अनुभवों से किया है। ग्रामीण जीवन के साथ गहरे रूप से जुड़ने का संकेत उनके इस उपन्यास में मिलता है। 'करुमक्कारयो' के माध्यम से रचनाकार श्री लंका के दक्षिण इलाके के निम्न-मध्यवर्गीय परिवार की जीवन-वृत्ति तथा मानवीय संबंधों का सूक्ष्म अन्वेषण करने का प्रयास किया है।

गुणदास अमरसेकर के औपन्यासिक विकास के दूसरे चरण में 'असत्य कथावक' उपन्यास को प्रमुख स्थान मिलता है। अमरसेकर का यह उपन्यास सन् 1977 में प्रकाशित हुआ। सन् 1971 वह वर्ष है जब श्रीलंका में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व्यवस्था के खिलाफ़ युवा आन्दोलन तथा जन-आन्दोलन प्रारंभ हो जाते हैं। यह पूँजीवादी वर्ग-विषमता, लूट, शोषण, अन्याय तथा अत्याचार के विरोध में समाजवाद की स्थापना की क्रांति थी। उसके नेतृत्व की बड़ी संख्या विश्वविद्यालय के छात्रों तथा मध्यवर्गीय युवकों की थी। इस उपन्यास में समाजवादी चेतना से प्रभावित विश्वविद्यालयी छात्रों में संगठित होने की चेतना का विशेष रूप में उल्लेख किया गया है। अमरसेकर ने पेरादेनिय विश्वविद्यालय को केंद्र में बनाकर 'असत्य कथावक' के माध्यम से जिन समस्याओं को उभारा है, वे देश की तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक स्थिति की सूचक हैं।

अमरसेकर की उपन्यास-यात्रा के तीसरे चरण के उपन्यासों के प्रति आलोचकों, राजनीतिक विचारकों तथा चिंतकों ने पर्याप्त

ध्यान दिया है। यह इसलिए है, क्योंकि अमरसेकर ने खुद अपने इन उपन्यासों को लेकर विवादास्पद मंतव्य प्रकट किये हैं। उनके उपन्यासों की तीसरी अवधि अर्थात् अंतिम अवधि 'गमनक मुल' उपन्यास से प्रारंभ होती है। इस उपन्यास का प्रकाशन 1984 में हुआ है। 'गमनक मुल' दीर्घ उपन्यास-यात्रा का पहला खंड है। इस उपन्यास-माला में अमरसेकर ने 19वीं शताब्दी में उदित ग्रामीण शिक्षित मध्य-वर्ग को आधार बनाकर उसके गाँव से शहर में संक्रमण होने तथा उसके बाद उस मध्यवर्ग के जीवन में आए परिणाम का चित्र उभारा है। अपने उन उपन्यासों में गाँव से शहर में संक्रमित हुए मध्यवर्गीय पात्रों को अमरसेकर ने इस प्रकार चित्रित किया है मानो उन पात्रों की जीवन-घटनाएँ उनकी अपनी जीवन-घटनाएँ हों।

नागार्जुन तथा अमरसेकर दोनों बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार हैं। हिंदी साहित्य को नागार्जुन की रचनाओं से असीम शक्ति एवं ऊर्जा प्राप्त हुई है। वहीं गुणदास अमरसेकर के उपन्यास सिंहली समाज को नवीन उत्तेजक की सेवा करते हैं। हिंदी साहित्य के 'नूतन कबीर' के नाम से जाने जानेवाले उत्कृष्ट जनवादी कृतिकार नागार्जुन का वैचारिक धरातल सामाजिक एवं राष्ट्रीय परिस्थितियों के द्वारा निर्मित हुआ था। नागार्जुन के उपन्यासों का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि उन्होंने अपने साहित्य में जीवन का जो विषद चित्रण किया है, उसमें प्रगतिशील जीवन-दृष्टि बराबर सक्रिय रही है। नागार्जुन के उपन्यासों में मूलतः मार्क्सवादी जीवन-दर्शन व्यक्त हुआ है। समतामूलक समाज की स्थापना में वे पूँजीवाद को बाधक मानते हैं। नागार्जुन की प्रगतिशीलता की दूसरी विशेषता यह है कि वे पूँजीवाद के खतरों के प्रति जनता को सावधान करते हैं। अमरसेकर के उपन्यास की प्रगतिशील चेतना प्रारंभिक दौर से देखने को मिलती है, किंतु उनके उपन्यास में मार्क्सवादी जीवन-दर्शन व्यक्त नहीं हुआ है। वहाँ पर अमरसेकर निराशावाद तथा आदर्शवाद से ऊपर उठकर यथार्थवाद की सीमा तक आते हैं, क्योंकि नागार्जुन की भाँति सामाजिक समस्याओं के प्रति अमरसेकर वर्ग-चेतना की दृष्टि से नहीं देखते। कहने का तात्पर्य यह है कि अमरसेकर के उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं को ऊपर उठाने की अपेक्षा सामाजिक परिस्थितियों को तथा उन सामाजिक परिस्थितियों के बदलाव के कारणों को उभारने का ज़्यादा अवकाश मिला है।

जैसा कि कहा गया है कि प्रगतिशीलता युगीन आयामों तथा संदर्भों को छोड़कर नहीं होती, ठीक उसी तरह अमरसेकर की प्रगतिशीलता का मानदण्ड भी हमें श्री लंकाई युगीन संदर्भों के सापेक्ष मानना चाहिए। भारत तथा श्री लंका पड़ोसी देश होते हुए भी दो राष्ट्रीय संस्कृतियों वाले देश हैं। दोनों देशों में बुर्जुआ-भूस्वामियों की संस्कृति अलग तथा जन साधारण की संस्कृति अलग है। इन दोनों देशों में कृषक-मज़दूरों और मध्यवर्ग की स्थिति भी अलग है। इसी कारण नागार्जुन की भाँति सर्वहारा वर्ग की अपने शोषण के खिलाफ़ संघर्ष करने की प्रवृत्ति अमरसेकर के उपन्यासों में नहीं मिलती। क्योंकि श्री लंका में भारत की तरह शोषित-पीड़ित तथा क्रांतिकारी सर्वहारा वर्ग की पैदाइशी ही नहीं हुई थी। श्री लंका में पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था के खिलाफ़ जनांदोलन का उदय तो हुआ है, परंतु उनका नेतृत्व सर्वहारा वर्ग के द्वारा नहीं, ग्रामीण मध्यवर्ग के युवाओं के द्वारा किया गया था, अतः अमरसेकर के उपन्यासों में उसी मध्यवर्ग का चित्रण व्यापक रूप में मिलता है। अमरसेकर ने वैचारिक रूप में उसी मध्यवर्ग को अपने अंतर्विरोधों को समझने के लिए तैयार करवाया है। युगीन सामाजिक समस्याओं के प्रति जो सिंह-दृष्टि अमरसेकर ने दिखायी है, ऐसी सिंहली साहित्य के अन्य उपन्यासकारों ने नहीं दिखायी है। इसी दृष्टि से अमरसेकर प्रगतिशील ज़रूर हैं।

समाज को शोषण से मुक्त करवाना नागार्जुन के अपने समय की सबसे बड़ी आवश्यकता थी। भारतीय जनता के शोषण के प्रति उदासीनता देखकर उन्हें जागरूक बनाने के लिए नागार्जुन ने अपने चिंतन और कर्म को संघर्ष का माध्यम बनाया है, अतः नागार्जुन प्रेमचंद से भी प्रगतिशील साहित्यकार माने जाते हैं। स्वतंत्रता के बाद श्री लंका के ग्रामीण समाज का विघटन अमरसेकर के अपने समय की सबसे बड़ी समस्या रही। वे साम्राज्यवादी आर्थिक नीतियों को स्वीकार नहीं करते। संपन्न वर्ग तथा पूँजीपति के प्रति उनमें हमेशा असंतोष रहा है, किंतु जब समस्याओं से मुक्त नये समाज के निर्माण की बात होती है, तब अमरसेकर का चिंतन वर्ग-चेतना से विरुद्ध राष्ट्र-चिंतन के धरातल पर मज़बूत होती है। किन्तु उनके उपन्यासों पर विहंगम दृष्टि डालने पर यह देखा जा सकता है कि प्रगतिशील दृष्टि अपनाते हुए अमरसेकर अपने उपन्यासों के माध्यम श्री लंका के आधुनिक इतिहास के सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं।

आलोच्य दोनों साहित्यकारों के उपन्यासों पर ध्यान देने से यह स्पष्ट होता है कि दोनों समाज के साथ प्रतिबद्ध हैं, जो प्रगतिशीलता का अनिवार्य मानदण्ड होता है। नागार्जुन की विचारधारा को व्यापक अर्थ में मानवीय और समाजोन्मुखी भी कह सकते हैं। अमरसेकर भी ऐसे कथाकार थे, जिन्होंने घोषित रूप में साहित्यिक कृतियों को सामाजिक सौद्देश्यता से जोड़ा और साहित्य की सामाजिक यथार्थवादी परंपरा का विकास किया। स्वयं उन्हीं के शब्दों में-

> किसी भी साहित्यकार की रचना में यदि सामाजिक तथा राजनीतिक दर्शन दृष्टव्य नहीं होता, तो उस साहित्य का सामाजिक सरोकार क्या हो सकता है? साहित्यकार बहुधा अपने देश तथा युग की परिस्थितियों से प्रभावित रहता है। अपने समाज से अलग रहना साहित्यकार के लिए असंभव है।
>
> (गामिणी 2013)

स्पष्ट है कि अमरसेकर ने सामाजिक दायित्व की भावना को सर्वोपरि माना है।

निष्कर्ष:

नागार्जुन तथा गुणदास अमरसेकर के उपन्यासों के अध्ययन के पश्चात् उनमें निरूपित प्रगतिशीलता की सीमाओं का कुछ अंतर भी दिखाई पड़ता है। इस संबंध में संक्षेप में यह कह सकते हैं कि नागार्जुन की तरह अमरसेकर ने अपने पात्रों को साहस और प्रतिरोध की शक्ति प्रदान नहीं की है। नागार्जुन के पात्र शोषण-अन्याय का विरोध करते हुए समाज, जीवन तथा अपनी दुनिया को परिवर्तित करने हेतु संघर्ष करते हैं। क्रांतिकारी पथ को अपनाते हैं, संगठित होकर लड़ते हैं।

स्पष्ट है कि नागार्जुन भारत के शोषित एवं अभावग्रस्त इंसानों के जीवन को सुधारने के लिए कृत संकल्प हैं, इसलिए उनके पात्र संघर्ष की आशा रखते हैं। वहीं गुणदास अमरसेकर के यहाँ ऐसे पात्रों का अभाव होता है, क्योंकि अमरसेकर के उपन्यासों में समाज की प्रगति, वर्ग-संघर्ष की दृष्टि से रेखांकित नहीं होती।यह भी हम देख सकते हैं कि अपनी उपन्यास-यात्रा के अंतिम चरण में आते-आते अमरसेकर की विचारधारा खंडित हो जाती है। अमरसेकर मार्क्सवादी हैं या राष्ट्रवादी हैं, इसे लेकर होनेवाली बहसें निरर्थक हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि अमरसेकर की विचारधारा नागार्जुन की तरह सुसंगत नहीं थी। अतः नागार्जुन के उपन्यासों में प्रगतिशील सामाजिक चेतना तथा अस्तित्व-

बोध की गहरी छाप अमरसेकर के उपन्यासों की अपेक्षा अधिक प्रभावी रूप में अंकित हुई है।

इस प्रकार दोनों के उपन्यासकारों का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि नागार्जुन तथा अमरसेकर दोनों उपन्यासकारों को प्रगतिशील मानना आवश्यक है, परंतु नागार्जुन जन्मना ब्राह्मण होकर भी ब्राह्मण नहीं हैं और बुद्ध के शरण में जाकर भी बौद्ध नहीं हैं, वे केवल अपने परिवेश और लोक के हैं। यही कारण है कि वे अमरसेकर की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील हैं।

ग्रंथ-सूची:

अमरसेकर, गुणदास.करुमक्कारयो.1989.

अरोरा, ललित.नागार्जुन: एक अध्ययन.1986.

गामिणी, कन्देपाल.मई लंकादीप.2013.

नागर्जुन.बलचनमा.1987.

--.नयी पौध.1999.

राय, आशुतोष.नागार्जुन का गद्य साहित्य.2006.

--. नागार्जुन का गद्य साहित्य. 2011.

संपर्क-सूत्र:
Career Counselor, University of Kelaniya
Visiting lecturer, University of Moratuwa
(M. Phil. in Hindi, Uniersity of Kelaniya
B. A. Special in Hindi, University of Kelaniya
PG Dip in Hindi, KHS, Agra, India)